

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 75 — दुर्योधन का अपमान

5 October 2026



युधिष्ठिर के राजसूय में आए सभी राजा, ऋषि और देवता प्रसन्न होकर लौटे — केवल एक को छोड़कर। मय द्वारा निर्मित सभा में दुर्योधन जल को स्थल समझ बैठता है, और प्रभु की एक दृष्टि उसके अभिमान को उस जलती ईर्ष्या में बदल देती है जो एक दिन पृथ्वी का भार हल्का करेगी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस पचहत्तरवें अध्याय में शुकदेवजी परीक्षित के हृदय में प्रतीक्षा करते एक प्रश्न का उत्तर देते हैं: जब राजसूय से सारा संसार आनन्दित था, तब अकेला दुर्योधन दुखी होकर क्यों लौटा? उत्तर देने से पहले ऋषि हमें यज्ञ की पूरी शोभा दिखाते हैं, और तब मय की सभा का वह शान्त दृश्य जहाँ ईर्ष्या को अपना घाव मिला।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

- अध्याय: 75 (पञ्चसप्ततितम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: दुर्योधन का अपमान
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: इन्द्रप्रस्थ — यज्ञभूमि, गंगा-तट और मय दानव द्वारा निर्मित सभाभवन
- केंद्रीय विषय: युधिष्ठिर के राजसूय की समापन-विधियाँ, अतिथियों की विदाई, और मय की सभा में दुर्योधन का अपमान
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 75, श्लोक 1-40
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

चौहत्तरवें अध्याय में शिशुपाल ने राजसूय में कृष्ण की निन्दा की और प्रभु के चक्र से मारा गया; उसकी आत्मा प्रभु में लीन हो गई। यज्ञ पूर्ण होने पर सभी अतिथि कृष्ण और युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए लौटे — किन्तु स्वभाव से पापी और कलहप्रिय दुर्योधन पाण्डवों का वैभव देखकर सह न सका।

परीक्षित का प्रश्न

इसी अन्तिम बात से परीक्षित का प्रश्न उठा। उन्होंने कहा, ‘भगवन्, आपने अभी बताया कि अजातशत्रु के महान् राजसूय में एकत्र सभी राजा, ऋषि और देवता उसकी सफलता पर आनन्दित हुए, और केवल दुर्योधन इसका अपवाद रहा। हे पूज्य, कृपया इसका कारण बताइए।’

प्रेम से बँधे बान्धव

शुकदेवजी ने यज्ञ की भावना से आरम्भ किया। परीक्षित के पितामह युधिष्ठिर महात्मा थे, और इन्द्रप्रस्थ आया प्रत्येक सम्बन्धी उनसे स्नेह में ऐसा बँधा था कि सबने यज्ञ में कोई-न-कोई कार्य स्वयं सँभाल लिया — आज्ञा से नहीं, प्रेम की भेंट के रूप में।

श्रीबादरायणिरुवाच

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ।

बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥

śrī-bādarāyaṇir uvāca pītāmahasya te yajñe rājasūye mahātmanaḥ bāndhavāḥ paricaryāyām tasyāsan prema-bandhanāḥ

अर्थ: श्री शुकदेवजी बोले: तुम्हारे महात्मा पितामह के राजसूय यज्ञ में उनके बान्धव, प्रेम के बन्धन में बँधे हुए, उनकी सेवा में लगे रहे। (स्कन्ध 10, अध्याय 75, श्लोक 3)

कार्य युग के श्रेष्ठतम पुरुषों में बाँटे गए। भीम रसोई के अध्यक्ष बने; दुर्योधन कोषाध्यक्ष; सहदेव ने अतिथियों का सत्कार सँभाला; नकुल ने सामग्री जुटाई। अर्जुन गुरुजनों की सेवा में रहे, और स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने सबसे विनम्र कार्य अपने हाथ में लिया — आने वालों के चरण धोना। द्रौपदी ने भोजन परोसा, उदार कर्ण ने दान दिया, और सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर, भूरिश्रवा तथा बाह्लीक के अन्य पुत्र, सन्तर्दन आदि सबने कोई-न-कोई दायित्व उठाया — सब राजा को प्रसन्न करने के इच्छुक।

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।

परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥

guru-śuśrūṣaṇe jiṣṇuḥ kṛṣṇaḥ pādāvanējane pariveṣaṇe drupada-jā karṇo dāne mahā-manāḥ

अर्थ: अर्जुन गुरुजनों की शुश्रूषा में, कृष्ण अतिथियों के पाद-प्रक्षालन में, द्रुपद-कन्या भोजन परोसने में और महामना कर्ण दान देने में नियुक्त हुए। (स्कन्ध 10, अध्याय 75, श्लोक 5)



प्रेम से युधिष्ठिर से बँधे प्रत्येक बान्धव ने राजसूय में कोई कार्य सँभाला — और स्वयं प्रभु ने अतिथियों के चरण धोना चुना।

गंगा की ओर यात्रा

जब ऋत्विज, सदस्य, विद्वान् और प्रिय मित्र मधुर वचनों, उत्तम उपहारों और दक्षिणा से सम्मानित हो चुके, और शिशुपाल सात्वतपति के चरणों में प्रविष्ट हो चुका, तब युधिष्ठिर यज्ञ को पूर्ण करने वाले अवभृथ-स्नान के लिए गंगा की ओर चले। मृदंग, शंख, पणव, नगाड़े, आनक और गोमुख एक साथ बज उठे; नर्तकियाँ आनन्द से नाच्यीं, गायक टोलियों में गाने लगे, और वीणा, वेणु और करताल का स्वर स्वर्ग तक पहुँचा।



शंख और मृदंग की ध्वनि के बीच युधिष्ठिर यज्ञ को पूर्ण करने वाले स्नान के लिए गंगा की ओर चलते हैं, पीछे पृथ्वी के राजा और ऊपर से बरसते स्वर्ग के फूल।

यजमान के पीछे राजा चले — यदु, सृजय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोशल — स्वर्ण-मालाएँ पहने, ध्वज-पताकाएँ लहराते, उनके हाथी, रथ, घोड़े और सुसज्जित सैनिक पृथ्वी को कँपाते हुए। ऋत्विज और श्रेष्ठ ब्राह्मण आगे-आगे उच्च स्वर में वेदपाठ करते चले, और देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व युधिष्ठिर की स्तुति करते हुए आकाश से पुष्प बरसाते रहे।

रंगों का उत्सव

पूरा नगर उत्सव में सम्मिलित हुआ। सुगन्धित लेप, मालाओं, आभूषणों और सुन्दर वस्त्रों से सजे स्त्री-पुरुष मार्गों पर खेलने लगे, एक-दूसरे पर अनेक प्रकार के द्रव छिड़कते और मलते हुए; वारांगनाओं ने पुरुषों पर तेल, दूध, सुगन्धित जल, हल्दी और गाढ़ा केसर मला, और बदले में स्वयं भी वैसे ही रंगी गई।

राजपरिवार की स्त्रियाँ उत्सव देखने की उत्सुकता से सैनिकों की रक्षा में बाहर निकलीं, जैसे स्वर्ग की देवियाँ अपने विमानों से झाँकती हों। श्रीकृष्ण और उनके साथियों ने उन पर रंगीन जल छिड़का, और उनके मुख लज्जाभरी हँसी से खिल उठे। रानियों ने पिचकारियों से उत्तर दिया, अपने देवों और मित्रों को भिगोते हुए; उनके वस्त्र भीगकर लिपट गए, उत्सुकता में चोटियाँ खुल गई और फूल झरने लगे। शुकदेवजी एक शान्त चेतावनी जोड़ते हैं: यह निर्दोष क्रीड़ा केवल उन्हीं के मन में अशुद्ध विचार जगा सकी जिनके हृदय पहले से मलिन थे।



पूरा नगर रंगों में खेलता है, और सैनिकों की रक्षा में आई राजस्त्रियाँ कृष्ण और उनके साथियों की छींटों का उत्तर लज्जाभरी हँसी से देती हैं — ऐसी क्रीड़ा जो केवल मलिन हृदय वालों को विचलित कर सकती।

पावन स्नान और सबका सम्मान

उत्तम घोड़ों और स्वर्ण-मालाओं वाले रथ पर अपनी रानियों के साथ बैठे युधिष्ठिर ऐसे शोभित हुए मानो स्वयं राजसूय अपनी समस्त क्रियाओं सहित मनुष्य-रूप में हो। पत्नी-संयाज और अवभृथ की विधियाँ पूर्ण होने पर ऋत्विजों ने उन्हें आचमन कराया और द्रौपदी के साथ गंगा में स्नान कराया। देवताओं की दुन्दुभियाँ मनुष्यों की दुन्दुभियों के साथ गूँज उठीं, और देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य पुष्पवर्षा करने लगे। फिर सभी वर्णों और आश्रमों के लोग अपने राजा के पीछे नदी में उतरे, क्योंकि उस क्षण वहाँ किया गया स्नान महापातकी को भी तत्काल पापों से मुक्त कर देता था।

तब युधिष्ठिर ने नये रेशमी वस्त्र और आभूषण धारण किए और ऋत्विजों, सदस्यों तथा ब्राह्मणों को वस्त्र और अलंकार देकर सम्मानित किया। नारायण-परायण राजा हर प्राणी में भगवान् को देखते थे, इसलिए उन्होंने अपने बान्धवों, राजाओं, मित्रों, हितैषियों और सामान्य जनों का भी बार-बार सत्कार किया। मणिजटित कुण्डलों, मालाओं, पगड़ियों, रेशम और मोतियों के हारों में पुरुष पृथ्वी पर उतरे देवताओं-से लगे, और स्त्रियाँ कुण्डलों, घुँघराली अलकों और स्वर्ण-मेखलाओं से दीप्त हुईं।

अतिथि विदा होते हैं, प्रभु रुक जाते हैं

फिर शीलवान् ऋत्विज, सभा के वेदज्ञ सदस्य, चारों वर्णों के लोग, एकत्र राजा, देवता, ऋषि, पितर और अन्य प्राणी, तथा अपने अनुचरों सहित लोकपाल — सबने यथोचित सम्मान पाकर युधिष्ठिर से विदा ली और अपने-अपने धाम लौटे, और जाते-जाते भी जो देखा था उसकी प्रशंसा रोक न सके।

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ।

नैवातृप्यन्प्रशंसन्तः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥

hari-dāsasya rājarṣe rājasūya-mahodayam naivātṛpyan praśaṁsantaḥ piban martyo 'mṛtaṁ yathā

अर्थ: हरि के दास राजर्षि के राजसूय के महान् वैभव का गुणगान करते हुए वे तृप्त ही नहीं होते थे — जैसे अमृत पीता हुआ मनुष्य कभी अघाता नहीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 75, श्लोक 27)

युधिष्ठिर वियोग की कल्पना भी सह न सके, और प्रेमवश उन्होंने अपने मित्रों और बान्धवों को — और श्रीकृष्ण को भी — रोक लिया। अपने भक्त को प्रसन्न करने के इच्छुक प्रभु ने साम्ब और अन्य यदुवीरों को द्वारका भेज दिया और स्वयं वहीं रुक गए। इस प्रकार धर्मपुत्र, जिन्होंने इस यज्ञ की कामना वैसे ही की थी जैसे कोई विशाल समुद्र पार करने की करता है, कृष्ण के द्वारा अपनी अभिलाषा पूर्ण पाकर अन्ततः सब चिन्ता से मुक्त हो गए।

वह वैभव जिसने दुर्योधन को जलाया

एक दिन दुर्योधन ने अन्तःपुर में घूमते हुए युधिष्ठिर की सम्पदा और अच्युत के इस भक्त द्वारा राजसूय से पाई महिमा को देखा, और भीतर ही भीतर जलने लगा। उस भवन में मनुष्यों के राजाओं, दैत्यों और देवताओं की समस्त सम्पदाएँ एकत्र थीं, जिन्हें उसके निर्माता मय ने अपनी कला से जुटाया था; और उन्हीं सामग्रियों से द्रौपदी अपने पतियों की सेवा करती थी। सबसे अधिक द्रौपदी के प्रति अपनी आसक्ति के कारण ही कुरुराज ईर्ष्या से तड़पता था। उस समय कृष्ण की सहस्र से अधिक रानियाँ भी उस भवन की शोभा थीं — नूपुरों की झंकार के साथ धीरे-धीरे चलतीं, केसर से रंगे मोतियों के हार पहने, झूलते कुण्डलों और लहराती अलकों से घिरे मुख।

मय की बनाई सभा में

मय द्वारा रची सभा में एक दिन सम्राट् युधिष्ठिर स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान थे, अपने अनुचरों और बान्धवों से और अपने नेत्र-स्वरूप श्रीकृष्ण से घिरे हुए। ब्रह्मलोक की-सी श्री से युक्त और वन्दीजनों द्वारा स्तुत वे इन्द्र के समान लग रहे थे।



मय की बनाई सभा में युधिष्ठिर स्वर्ण-सिंहासन पर इन्द्र-से दमकते हैं, पास में कृष्ण — और अभिमानी दुर्योधन द्वारपालों को डाँटता हुआ भीतर आता है।

उस सभा में अभिमानी दुर्योधन अपने भाइयों के साथ आया — मुकुट और माला धारण किए, हाथ में तलवार लिए, प्रवेश करते समय द्वारपालों को क्रोध से डाँटता हुआ। किन्तु वह सभा मय के मायाजाल से रची थी, और अहंकारी राजकुमार उसे पढ़ न सका।

स्थलेऽभ्यगृह्णाद् वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ।

जले च स्थलवद् भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥

sthale 'bhyagr̥hṇād vastrāntaṁ jalaṁ matvā sthale 'patat jale ca sthala-vad bhrāntyā maya-māyā-vimohitaḥ

अर्थ: मय की माया से मोहित होकर उसने सूखी भूमि को जल समझकर वहाँ अपने वस्त्र का छोर उठा लिया, और फिर जल को भूमि समझकर उसमें गिर पड़ा। (स्कन्ध 10, अध्याय 75, श्लोक 37)

उसे गिरते देख भीम ठहाका मारकर हँस पड़े, और स्त्रियाँ तथा अन्य राजा भी उनके साथ हँसे। युधिष्ठिर ने उन्हें रोकना चाहा, किन्तु श्रीकृष्ण के अनुमोदन के संकेत ने उनकी हँसी को बढ़ावा दिया।

प्रभु की मौन दृष्टि

लज्जा और क्रोध ने दुर्योधन को उसी क्षण सभा से बाहर खींच लिया, और वह बिना एक शब्द कहे हस्तिनापुर की ओर चल पड़ा। उपस्थित सज्जन हाहाकार कर उठे, और युधिष्ठिर ऐसे व्यथित हुए मानो आघात उनके ही हृदय पर लगा हो। किन्तु प्रभु कुछ न बोले — क्योंकि दुर्योधन को भ्रमित करने वाली उन्हीं की दृष्टि थी, और पृथ्वी का भार उतारा जाना शेष था।

स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन् निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ।

हाहेति शब्दः सुमहानभूत् सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ।

बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद् दृशा ॥ ३९ ॥

sa vrīḍito 'vāg-vadano ruṣā jvalan niṣkramya tūṣṇīm prayayau gajāhvayam hā-heti śabdaḥ su-mahān abhūt satām ajāta-śatrur vimanā ivābhavat babhūva tūṣṇīm bhagavān bhuvo bharaṁ samujjihīrṣur bhramati sma yad-dṛśā

अर्थ: अपमानित, नीचा मुख किए और क्रोध से जलता हुआ दुर्योधन चुपचाप निकलकर हस्तिनापुर चला गया। सत्पुरुषों में बड़ा हाहाकार मच गया और अजातशत्रु खिन्न-से हो गए; किन्तु पृथ्वी का भार हरने के इच्छुक भगवान्, जिनकी दृष्टि से दुर्योधन मोहित हुआ था, मौन रहे। (स्कन्ध 10, अध्याय 75, श्लोक 39)



अपमानित और क्रोध से जलता दुर्योधन बिना एक शब्द कहे हस्तिनापुर चल देता है; जिनकी दृष्टि ने उसे भ्रमित किया था, वे प्रभु पृथ्वी के भार के लिए मौन रहते हैं।

शुकदेवजी ने तब अपना उत्तर पूर्ण किया: ‘हे राजन्, तुमने मुझसे पूछा था कि महान् राजसूय यज्ञ में पाण्डवों के प्रति दुर्योधन की दुर्भावना कैसे जन्मी। यही मैंने तुम्हें बताया है।’

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रेम से की गई सेवा ही यज्ञ का हृदय है। बान्धवों ने सेवा इसलिए की क्योंकि स्नेह उन्हें युधिष्ठिर से बाँधे था (श्लोक 3)। किसी कर्म को पवित्र उसकी भव्यता नहीं, वह प्रेम बनाता है जो सेवक को सेव्य से जोड़ता है।
2. प्रभु सबसे नीचा आसन चुनते हैं। यज्ञ के सभी पदों में कृष्ण ने पाद-प्रक्षालन लिया (श्लोक 5)। विनम्रता भगवान् से नीचे की वस्तु नहीं; वह उनका अपना स्वभाव है, और प्रत्येक भक्त का आभूषण।
3. भक्त का सौभाग्य उसे छूने वाले सबको पवित्र करता है। युधिष्ठिर के यज्ञ के बाद का स्नान महापातकी को भी शुद्ध कर गया, और अतिथि यज्ञ की प्रशंसा ऐसे करते रहे जैसे मनुष्य अमृत पीता है (श्लोक 27)। हरि के दास की सफलता पूरे संसार के लिए वरदान है, और कृष्ण के सहारे की गई उसकी अभिलाषा ज्वर में नहीं, शान्ति में समाप्त होती है।
4. ईर्ष्या जल को स्थल और स्थल को जल देखती है। मय की माया से मोहित दुर्योधन फर्श और कुण्ड में भेद न कर सका (श्लोक 37)। ईर्ष्यालु हृदय सामने की हर वस्तु को गलत आँकता है, और उसका अपना अभिमान ही वह जाल बन जाता है जिसमें वह गिरता है।
5. प्रभु का मौन ही उनकी इच्छा है। कृष्ण न हँसे, न सान्त्वना दी, फिर भी दुर्योधन को भ्रमित करने वाली उन्हीं की दृष्टि थी (श्लोक 39)। यही इस अध्याय का गहनतम बिन्दु है: यह अपमान किसी चतुर फर्श की दुर्घटना नहीं, स्वयं प्रभु की व्यवस्था थी। पृथ्वी का भार हरने के लिए अवतरित प्रभु ने दुर्योधन में ईर्ष्या को पकने दिया, ताकि संसार को पीड़ित करने वाला कौरवों का दर्प एक दिन कुरुक्षेत्र में एकत्र होकर मिटा दिया जाए। भक्त अपमान पर दुखी होता है; आरम्भ से अन्त देखने वाले प्रभु स्थिर रहते हैं। उस दिन सभा में कुछ भी उनकी योजना से बाहर न था — और हमारे जीवन में आने वाले दुःख भी नहीं।

एक भाक्तेमय चिन्तन

इस अध्याय के केन्द्र में दो पुरुष खड़े हैं, और दोनों के हाथ में सम्पदा सौंपी गई है। सबके स्वामी कृष्ण जल का पात्र उठाकर अतिथियों के चरण धोते हैं। कोषाध्यक्ष दुर्योधन एक राज्य का स्वर्ण गिनता है और आने से भी अधिक दरिद्र होकर घर लौटता है। प्रभु ने हर अतिथि को सेवा योग्य देखा; कुरुराज ने हर रत्न को अपनी कमी की तरह देखा, और मय की सभा ने केवल वही प्रकट किया जो ईर्ष्या उसके भीतर पहले ही कर चुकी थी। कितनी बार हम किसी के आशीर्वाद में प्रवेश करते हैं और केवल अपने अभाव की चुभन अनुभव करते हैं? यह अध्याय हमें युधिष्ठिर के साथ खड़े होने को कहता है, जिन्होंने जिसका भी सत्कार किया उसमें नारायण को देखा, और उन अतिथियों के साथ जो अमृत-सी प्रशंसा पीते हुए घर लौटे। किसी भक्त के सौभाग्य पर आनन्दित होना स्वयं एक प्रकार की उपासना है; और जब हम ही झुकाए जाएँ, तब प्रभु का मौन अनुपस्थिति नहीं, उनकी देखभाल है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज जब किसी और की सफलता या आशीर्वाद दिखे, तो उसे प्रसन्नता से प्रभु को अर्पित करें, जैसे राजसूय के अतिथियों ने युधिष्ठिर के सौभाग्य की सराहना की। यदि ईर्ष्या चुभे, तो अतिथियों के चरण धोते कृष्ण को स्मरण करें, और दिन ढलने से पहले अपने निकट किसी के लिए एक छोटी, विनम्र सेवा करें। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

शुकदेवजी ने परीक्षित को एक ही उत्सव के दो रूप दिखाए: एक ओर प्रेम से सेवा करने वाले बान्धव, चरण धोने वाले प्रभु और हर एक में नारायण मानकर सत्कार करने वाले राजा; दूसरी ओर एक अकेला राजकुमार जिसकी ईर्ष्या ने पाण्डवों के आनन्द को अपनी यातना बना लिया, जब तक मय की सभा और प्रभु की दृष्टि ने उसे सबके सामने गिरा न दिया। उसी गिरने से वह दुर्भावना जन्मी जो कौरवों के भाग्य को गढ़ने वाली थी, और प्रभु ने ऐसा होने दिया। हम भी बान्धवों की तरह सेवा करें, अतिथियों की तरह आनन्दित हों, और विश्वास रखें कि हमारे अपमान भी उनकी मौन, सर्वदर्शी देखभाल में टिके हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 75।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-75-duryodhana-humiliated-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

